'उर्वशी' में प्रेम निरूपण

प्रॉ. कानजीभाई आर. पाया
आसि. पॉ. एवम् हिन्दी-विभागाध्यक्ष,
सरकारी विनयन कॉलेज, वाव जनपद-बनासकांठा (गुजरात)

'प्रेम' शब्द का अर्थ है 'तृप्तिकारक' । उसके भाववाचक रूप का अर्थ हुआ 'तृप्ति' । प्रेम शब्द से हृदय से उस तृप्ति रूप का आनंद का संकेत होता है जो हमें किसी विषय के दर्शनादि से मिलता हैं । श्री विश्वनाथ के मतानुसार, 'चित्तरूपी समुद्र में जब सत्व गुण का जल भर जाता है तो उसमें दृष्टि, परिचय, हारद तथा प्रेम नाम की चार तरंगे उठा करती हैं । प्रेम का मूलोत्पाद आत्मा का सत्व गुण है । विषय तो मात्र निमित्त कारण हैं । प्रेम में आठ ऐसे गुण होते हैं, जिनसे प्रेमी के चित्त संस्कार होता हैं । वे ये हैं– उल्लास, ममता, विस्रभ, प्रिय के गुणों का अभियान, चित्त का द्रविभाव, अतिशय अभिलाष, प्रिय के विषय में नवनत्व की अनुभूति एवम् प्रिय संबंधी किसी विलक्षण गुण के कारण उन्माद ।'

'उर्वशी' कविवर रामधारीसिंह 'दिनकर' विरचित 'गीतिनाट्य' है । इसकी कथा पाँच अंकों में विभाजित हैं । पुरूरवा, उर्वशी, औशीनरी प्रमुख पात्र तथा मेनका, रंभा इत्यादि गौण पात्र हैं । पुरूरवा प्रतिष्ठानपुर का महाराजा है तथा उर्वशी स्वर्ग की अप्सरा है । वह भरत-शाप के कारण पृथ्वी पर आई है । भारतीय वाङ्मय में उर्वशी का चित्रण ववविध रूपों में हुआ हैं । बहुविध कथाएँ उसके आर्विभाव के साथ सम्बन्धित हैं । हर उत्पति के साथ काम-भावना किसी-न-किसी रूप से संयुक्त है । काम पर नियंत्रण पाना असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है । कविवर दिनकर का धर्म, नैतिकता एवम् विज्ञान सम्बन्धी विधान देखें-

'इसे अपदस्थ करने की चाहे जितनी भी चेष्टाएँ की जाएँ, वह बार-बार सिंहासन पर आ बैठता है और शास्त्र एवम् नैतिकता के प्रहरी उसे बाँधने की जो तैयारी करते है, उस पर सेक्स का देवता व्यंग्य से मुस्कराता है, मानो वह कह रह है कि उतने बंधन तो मैं तोड़ चुका । देखूँ, इस बार तुम कैसे कड़ियाँ तैयार करते हो ।'

भारतीय दर्शन में इन निवृत्तिमूलक कड़ियों की जकड़ इतनी मज़बूत थी कि इनका प्रभाव एक लम्बे समय तक बना रहा । दिनकर जी की कामचिंतन की पृष्ठभूमि में नारी विषयक एक निश्चित धारणा रखते थे । जैसे-

"नारी के भीतर एक ओर नारी है, जो अगोचर और इन्द्रियातीत है । इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है, जब शरीर की धारा उछालते-उछालते, उसे मन के समुद्र में फेंक देती है, जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँच कर निस्पन्द हो जाता है ।"[1]

यूँ देखें तो प्रेम विषयक दृष्टिकोण बहुत ही रोमाण्टिक है, फिर भी दिनकर का यह दृष्टिकोण नितांत रोमाण्टिक नहीं है । उन्होंने लोकतंत्र एवम् स्वतंत्रता के विश्वव्यापी माहौल में नारी की आत्मा उसके

हार्दिक भावपूर्ण रूप के साथ आंतरिक-बाह्य समस्त रूप का निरूपण प्रस्तुत किया है । 'उर्वशी' की भूमिका में दिनकर लिखते है.-

"मेरी दृष्टी में पुरुरवा सनातन नर का प्रतीक है और उर्वशी सनातन नारी का । उर्वशी शब्द का कोशगत अर्थ होगा उत्कट अभिलाषा, अपरिमित वासना, इच्छा अथवा कामना । और पुरुरवा शब्द का अर्थ है वह व्यक्ति, जो नाना प्रकार से रव करे,नाना ध्वनियों से आक्रान्त हो । उर्वशी चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक् तथा श्रोत्र की कामनाओं का प्रतीक है ; पुरुरवा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शबद से मिलनेवाले सुखों से उद्वेलित मनुष्य ।"[2]

दिनकर की उर्वशी एक निष्ठावान प्रेमिका है । वह अभिषारिका नायिका है । वह देह-सोष्ठव के मूल्य पर पयस्विनी माँ भी बननेवाली नारी है । 'कामायनी' की भाँति 'उर्वशी' में भी प्रेम का उन्नयन वासना से दर्शन तक हो जाता है । जैसे -

"पहले प्रेम का स्पर्श होता है, तदन्तर चिंतन भी ।
प्रयण प्रथम मिट्टी कठोर है, तब वायव्य गगन भी ॥"[3]

दिनकर पर डी. एच. लोरेंस का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगत होता है । उनका कहना है कि हम कितना भी कठोर और संयमी बनने का यत्न क्यों न करें; हम में से अधिकांश लोग सेक्स के सामान्य जागरण को पसंद करते है । सेक्स हमें उष्णता प्रदान करता है, किसी बदली के दिन में प्रकट होनेवाली धूप की तरह उत्तेजित करता है, हममें जीवन की लहर दौड़ा देता है । उर्वशी की अनुभूति में भी यही स्पर्श झलकता है। वह कहती है-

"यह विधुत्मेय स्पर्श तिमिर है, पाकर जिसे त्वचा की,
नींद टूट जाती, रोमों में दीपक बल उठते है ॥"[4]

इस विधुत्मेय स्पर्श के बाद उसका शमन भी जरूरी है । शारीरिक प्रेम-भावना हमारे रक्त में तिल के तेल की भाँति अन्तर्निहित है । इसलिए तो 'रुधिर की वहिन ', रुधिर की आग' तथा 'शोणित की तीव्र क्षुधा' है –

"रकत्त बुद्धि से अधिक बली है और अधिक ज्ञानी भी,
क्योंकि बुद्धि सोचती और शोणित अनुभव करता है ।"[5]

प्रेम की आध्यात्मिक महिमा होती है इन्द्रियों के मार्ग से अतीन्द्रिय धरातल का स्पर्श । सेक्स (काम) तो दो देहों का संबंध है, किन्तु प्रेम तो मानसिक मिलन भी है । रूप की आरधना का मार्ग आलिंगन नहीं रह जाता, वह अवलम्बन की स्थिति तक साथ ही रहे यह स्पृहर्णीय है । इसका कारण सेक्स में केवल दैहिक अनूभूति होती है, जबकि प्रेमानुभूति में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक–तीनों अनुभूतियों का समन्वय हो जाता है । कवि ने निष्काम की कल्पना की है । उसमें सन्तान-इच्छा का यह अर्थ नहीं है कि वह लक्ष्य-भ्रष्ट हो रहा है । सन्तान प्रेम न होने की स्थिति का परिणाम भी हो सकता है । निष्काम काम तो नर-नारी के शरीर, मन और आत्मा की भूमि पर एकरूप होता है –

"देह प्रेम की जन्म-भूमि है, पर, उसके विवरण की,
सारी लीला-भूमि नहीं सीमित है रुधिर-त्वचा तक ।

यह सीमा प्रसारित है मन के गहन, गुह्य लोकों में,
जहाँ रूप की लिपि अरूप की छबि आँका करती है,
और पुरुष प्रत्यक्ष विभासित नारी-मुखमण्डल में,
किसी दिव्य, अव्यक्त्त कमल तो नमस्कार करता है ।"[6]
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है –

"कवि का अभिप्रेत विषय उर्वशी है — उद्दाम मानसवेग । ..... उर्वशी नाद का प्रतिनिधित्व करती है, पुरुरवा क्रिया का और औशीनरी प्रतिक्रिया का ।"[7]

उर्वशी सृष्टि प्राणधारा है । वह सदा नवयौवना नारी है पुरुरवा ने उसके विषय में कहा है–
"जब से तुम आयीं, पृथ्वी कुछ अधिक मुदित लगती है ;
शैल समझते है, उनके प्राणों में जो धारा है,
बहती है पहले से वह कुछ अधिक रसवती होकर ।"[8]

उर्वशी अभिसारिका के रूप में प्रस्तुत हुई है । वह पुरुरवा के गुणों पर मुग्ध होकर मृत्युलोक में उसके साथ अभिसार करने आई है । अभिसारिका के बारे में आचार्य विश्वनाथ ने कहा है –
'अभिसारयते कान्तं वा मन्मथवशवदा ।
स्वयं वाभिसारत्येषा धीरैरुक्ताभिसारिका ॥"[9]
कामासक्त्त होकर जो स्वयं कान्त (प्रिय) के पास जाये या बुलाये, वह अभिसारिका कहलाती है । उर्वशी कामवशगता है –
"जब से हम-तुम मिले, न जाने, कितने अभिसारों में,
रजनी कर शृंगार सितासित नभ में घूम चूकी है ।"[10]
उर्वशी के प्रेम की पवित्रता एवम् कल्षम-हीनता को देखकर पुरुरवा विस्मृति में डुब जाता है –
"और तब सहसा
न जाने, ध्यान खो जाता कहाँ पर
सत्य ही, रहता नहीं यह ज्ञान ,
तुम कविता, कुसुम या कामिनी हो ।"[11]

पुरुरवा इतना प्रेमास्कत हो गया है कि वह उर्वशीमय बन गया है । परंतु उर्वशी का अभिसारिका-रूप उसे सदा दर्श-स्पर्शन, चुम्बन, आलिंगन इत्यादि की मनोकामना जाग्रत करता रहता है –
"पर, मैं बाधक नहीं, जहाँ भी रहो, भूमि या नभ में,
वक्षस्थल पर, इसी भाँति, मेरा कपोल रहने दो ।
कसे रहो, बस, इसी भाँति , उस-पीड़क आलिंगन में
और जलाते रहो अधर-पुट को कठोर चुंम्बन से ।"[12]

जब पुरुष का ह्रदय कामना से चीख उठता है, तब पीड़ा से जन्मी यही सनातन नारी उसकी तृष्णा शान्त करने आ जाती है । पुरुरवा की विवशता देखिए –
"एक पुष्प में सभी पुष्प, सब किरणें एक किरण में,

तुम संहित, एकत्र एक नारी में सब नारी हो ।"[13]

वियोग में पुरुरवा का भावावेश देखिए –

"मेरे अश्रु ओस बनकर कल्पद्रुम पर छायेंगे,
पारिजात-वन के प्रसून आहों से कुम्हलायेंगे ।
मेरी मर्म-पुकार मोहिनी ! वृथा नहीं जायेगी,
आज नहीं तो कल तुझे इन्द्रपुर में वह तड़पायेगी ।"[14]

प्रेम पुरुरवा में उन्माद की स्थिति उत्पन्न कर देता है । वह रूप के रस में प्रतिक्षण निमग्न रहना चाहता है और रूप की आराधना आलिंगन द्वारा है या नहीं, इस द्वन्दमय स्थिति में पड़ जाता है । प्रॉ. विजेन्द्रनारायणसिंह के अनुसार –

"इस प्रकार उसमें अनेक स्मृतियाँ है, पुलक है, उन्माद-लहरें कामनाएँ है, तो कभी उसमें पराक्रम और शरीर–गढ़न की भी स्मृति जाग उठती है । 'दिनकर' का पुरुरवा तन के धरातल पर मनुष्य है, किन्तु मन के धरातल पर संन्यासी है ।"[15]

उर्वशी ज्वलन्त एवम् उत्कट प्रेम का प्रतीक है । वह अभिसारिका तो है ही । वह प्रकृति और पुरुष का अंग है, पुरुष परमात्मा है । प्रकृति एवम् परमात्मा में अभेदत्व है, इसलिए स्त्री और पुरुष एक है । वही वास्तविक रूप से अर्धनारीश्वरत्व ही है । देखें –

"किसने कहा तुम्हें, परमेश्वर और प्रकृति, ये दोनों
साथ नही रहते ; जिसको ईश्वर तक जाना है,
उसे तोड़ लेने होंगे सारे सम्बन्ध प्रकृति से ;
और प्रकृति के रस में जिसका अन्तर रमा हुआ है,
उसे और जो मिले, किन्तु, परमेश्वर नहीं मिलेगा ?"[16]

उर्वशी और पुरुरवा के प्रेम के अतिरिक्त्त अंत में पुरुरवा का अपने पुत्र के प्रति वात्सल्य प्रेम भी अद्वितीय है । स्वप्न दृश्य में उसके प्रेम का अन्य रूप वात्सल्य-भाव से प्रकट हुआ है । समीक्षकों ने तो इस स्थिति को हिन्दी-काव्य में अद्वितीय माना है –

"किन्तु, लाल ! अब आलिंगन से कैसे भाग सकोगे ?
यह प्रस्तुत का नहीं, जगे का सुदृढ़ बाहु-बन्धन है ।"[17]

इस प्रकार उर्वशी प्रेयसी एवम् वत्सल-माता के रूप में प्रस्तुत हुई है तो पुरुरवा एक प्रेमी और वत्सल-पिता के रूप में सामने आया है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने उर्वशी की कतिपय विशेषताएँ बताई है-

"वह नर के विक्रम की प्रशंसिका है तथा अप्सरा होते हुए भी मातृत्व के वात्सल्य से परिपूर्ण है । वस्तुतः प्रथम रूप में वह मात्र प्रेयसी है, रमणी है; अनिंद्य रूपसी है, रूपगर्विता भी है , कुछ-कुछ वैसी ही जैसी प्रसाद की कमला है । प्रिय के रूप में प्रचंड झंझा है । छूती है, झकझोर देती है पर धराई नहीं देती, पकड़ में नहीं आती । उसका महत्त्व वृध्धि पाता है चतुर्थ अंक में । यही वह व्यष्टि नारी होती है– भले ही वह कालजयी पूर्वरूप में भी है । महाकाव्यात्मक उदातत्ता भी उसे चतुर्थ और पंचम अंक में ही

मिलती है । मातृत्व के बोझ उसे शामित-वह्नि बना देता है । इसका संक्रामक सन्तोष ही उसकी महिमा है । '..... माता रूप में वह सरस स्रोतस्विनी है, रुक नहीं सकती, पर गलती हुई झरती है ।' "[18]

संदर्भसूची

1. रामधारीसिंह 'दिनकर'; उर्वशी की भूमिका 'ख' से उदधृत.
2. वही ; उर्वशी की भूमिका 'ख' से उदधृत.
3. वही ; उर्वशी ; पृ.-48
4. वही ; उर्वशी ; पृ.-35
5. वही ; उर्वशी ; पृ.-45
6. वही ; उर्वशी ; पृ.-47-48
7. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ; दिनकर : सृष्टि और दृष्टि ; पृ.-215
8. रामधारीसिंह 'दिनकर'; उर्वशी ; पृ.-58
9. आचार्य विश्वनाथ ; साहित्यदर्पण ; परिच्छेद-3, कारिका-76
10. रामधारीसिंह 'दिनकर'; उर्वशी ; पृ-31
11. वही ; उर्वशी ; पृ.-39
12. वही ; उर्वशी ; पृ.-50
13. वही ; उर्वशी ; पृ.-79
14. वही ; उर्वशी ; पृ.-17
15. प्रॉ. विजेन्द्रनारायणसिंह ; उर्वशी उपलब्धि और सीमा ; पृ.-71
16. रामधारीसिंह 'दिनकर' ; उर्वशी ; पृ.-60
17. वही ; उर्वशी ; पृ.-111
18. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ; दिनकर : सृष्टि और दृष्टि ; पृ.-222